इक्कीसवीं शताब्दी में शिक्षा की चुनौतियां

नियाज़ बेग मिर्ज़ा

आजादी प्राप्ति के संघर्ष और उसके बाद हमने बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए कई प्रयास और प्रयत्न प्रारंभ किये, संकल्प और सपने सजोये। प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने बालकों को भारत के भविष्य का निर्माता कहा और बाल दिवस आयोजन की शुरुआत हुई। भारतीय शिक्षा आयोग के अध्यक्ष डा. डी.एस. कोठारी ने "भारत के भविष्य का निर्माण कक्षा कक्षों में हो रहा है" प्रेरणा सूत्र दिया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को युवा प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 21वीं सदी के लिए लंबी छलांग की बात कही। इसी नीति की भूमिका में कहा गया "बालक एक बेशकीमती संपदा है, अमूल्य संसाधन है। जरूरत इस बात की है कि उसकी परवरिश गतिशील और संवेदनशील हो और सावधानी से की जाए।"

संयुक्त राष्ट्र संघ ने राष्ट्रों के समक्ष बच्चों के जीवन यापन, विकास और संरक्षण हेतु कुछ लक्ष्य प्रस्तुत किए। 18 वर्ष से कम आयु के सभी बच्चों के लिए 54 अधिनियम पारित किए। भारत ने 11 दिसंबर 1992 में इसका अनुमोदन किया।

बाल अधिकार

"बच्चे मासूम, कोमल और बड़ों पर निर्भर हैं। वे जिज्ञासू, सक्रिय व आशा से भरे हैं। उनका समय आनंद व शांति का होना चाहिए--खेलने-सीखने और गाने का समय। उनके भविष्य का निर्माण अमन, चैन व शांति के माहौल में होना चाहिए। उनकी जिंदगियां परिपक्व होनी चाहिए।"

"हर बच्चे को अच्छे से अच्छा स्वास्थ्य, रहने को घर एवं पर्याप्त पोषण मिलना चाहिए। हर बच्चा खेल-कूद सके व निःशुल्क शिक्षा पाए। चाहे लड़का हो या लड़की, चाहे किसी भी धर्म का हो, किसी भी जाति का हो, कहीं भी जन्म लिया हो, उसे बराबर का अधिकार मिलना चाहिए। हर एक को नाम व राष्ट्रीयता का हक, स्नेह, स्वतंत्र विचार, समझ और सुरक्षा का अधिकार, अवहेलना, क्रूरता और शोषण से हर बच्चे को सुरक्षा मिले।"

बालकों के ये अधिकार आज भी पूरे नहीं हुए हैं। 21वीं सदी में जिस तरह जनसंख्या वृद्धि हो रही है, बच्चों की संख्या और बढ़ेगी। अभाव, अशिक्षा, भूख, रोग, झुग्गी-झोंपड़ियों का जीवन भी ज्यादा बढ़ेगा। शिक्षा से वंचित, बाल श्रमिक शहरों में चिन्दियों, रद्दी व सड़कों पर कूड़ा करकट एकत्रित करने वाले बालकों को स्कूल में लाने, पूर्ण शिक्षा एवं अच्छे स्वास्थ्य के दायित्व को पूरा करने का दायित्व निभाना होगा। सबको शिक्षा, सबको स्वास्थ्य, सबको आवास, सबको रोजगार और सबके साफ पीने का पानी क्या हम 21वीं सदी में दिलाने का ठोस कार्यक्रम क्रियान्वित कर सकने में समर्थ हो सकेंगे? इसके लिए हमें प्रतिबद्धता, समर्पण एवं कर्त्तव्य परायणता से झूझना पड़ेगा। विशेषकर 'सबके लिए शिक्षा' एवं संपूर्ण साक्षरता के लक्ष्यों की पूर्ति करने के लिए।

शिक्षा धीरे-धीरे एक बड़ा उद्योग बनता जा रहा है। सरकारी शिक्षा, प्राइवेट शिक्षा, जैसे सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र। Have's और Have's not अमीर और गरीब के लिए अलग-अलग व्यवस्थाएं, फिर मध्यम वर्ग के लिए बीच की व्यवस्थाएं, जो भारी भरकम फीस दे सकते हैं वे बढ़िया से बढ़िया शिक्षा खरीद लेते हैं। वे बाकी के निःशुल्क सरकारी स्कूलों में राष्ट्रीय शिक्षा क्रम की पूर्ति कर लेते हैं। कुछ मध्यम वर्ग के लोग अपनी कमाई से बचत कर नौनिहालों को शहरों के अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में अच्छी शिक्षा करा देते हैं। बाकी सरकारी मेहरबानी से नवोदय विद्यालयों 'आदर्श विद्यालयों' में अपना भाग्य आजमा लेते हैं।

सब बच्चे पब्लिक स्कूलों में नहीं पढ़ सकते। तीन चौथाई बालक-बालिकाओं के लिए व्यवस्था सरकारी स्कूल ही पूरी करते हैं। सरकारी स्कूलों में भवन पूरे नहीं, विज्ञान शिक्षक नहीं, समय पर पाठ्यक्रम पूरा नहीं हो पाता, स्थानांतरण एवं पदोन्नति, वेतन श्रृंखला हेतु आंदोलन, बजट की कमी, बजट का 6 प्रतिशत दे नहीं पाये हैं अब तक हम। अच्छे पुस्तकालय और प्रयोगशाला भी नहीं हैं। और तो और अभी तक सभी स्कूलों में पीने का शुद्ध पानी, बालक-बालिकाओं के लिए स्वच्छ सुविधा गृहों का भी प्रबंध नहीं कर पाये हैं। हमें इन सुविधाओं की सबके लिए व्यवस्था करनी ही होगी। राजधानी दिल्ली तक में कई स्कूल 'टेंट्स' में चल रहे हैं और अन्य सुविधाओं की पूर्ति का तो सोचना दिवास्वप्न ही होगा।

बुनियादी शिक्षा-कुछ उभरते प्रश्न

गांधीजी ने जो विचार प्रतिपादित किए और व्यवहार में ढाले वे आज और मौजूं नजर आते हैं। सभी समितियों एवं नीतियों में उन्हें महत्व दिया गया है। लेकिन गुलामी एवं आजादी के समय भी लोगों

ने गांधी जी के दर्शन एवं शिक्षा के व्यावहारिक सरल एवं स्वदेशी विचारों को शायद विवादास्पद विचार मानने जैसे–स्थानीय आत्म निर्भरता, स्वायत्ता पर भरोसा, इकलौते विकल्प पर निर्भर नहीं होने, पहल कदमी एवं स्वतंत्रता, हाथ से कार्य करने, स्थानीय समुदाय एवं परिवार को महत्व देने, परस्पर संवाद एवं प्रजातंत्र की आवश्यकता हेतु बुनियादी शिक्षा को अनिवार्य एवं अपिरहार्य माना जाना आदि को हम आस्था, निष्ठा एवं आत्मीयता से स्वीकार नहीं कर सके, यही सबसे बड़ी भूल साबित हुई। आज भी सभी देशों में शिक्षा में परिवर्तन की लहर, नवाचार, सबको शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने में इन्हीं सिद्धांतों को स्वीकारा जा रहा है एवं इन्हें ही प्रतिपादित, प्रचारित किया जा रहा है।

बच्चों की शिक्षा का मॉडल–कुछ सिद्धांत

– स्वीकृत ज्ञान की पुनः खोज में बच्चे का पर्यावरण एवं संसाधन होना चाहिए।

– बच्चे को यह छूट होनी चाहिए कि वे दुनिया के बारे में ज्ञान का अपना मॉडल बना सके।

–सीखने के दौरान बच्चों को शारीरिक रूप से सक्रिय रह पाने का अवसर मिले।

–बच्चे के घर व स्थानीय जीवन का प्रतिबिंब व विस्तार कक्षा की गतिविधियों में होना चाहिए।

–हस्तकला को स्कूल पाठ्यक्रम में एक संघटक तत्व के रूप में रखा जाए–

1. स्कूल और काम के बीच संबंध बनाना।
2. पाठ्यक्रम में गतिविधि का पक्ष जोड़ना।
3. आत्मनिर्भरता का अहसास देना।

काम के प्रति सम्मान

गांधी जी के पूरे जीवन का मिशन था कि गुलाम बनाए गए लोगों में *विकल्प चुनने और पहल करने का साहस पैदा हो*। प्रौढ़ों और उस पीढ़ी को तो उन्होंने उत्प्रेरित कर आजादी के आंदोलन में खड़ा कर दिया लेकिन भावी पीढ़ी को 'बुनियादी तालीम' के जरिए स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता, निजी जिम्मेदारी उठाने की इच्छा एवं स्वायत्तता के लिए तैयार, प्रशिक्षित एवं समर्पित करने के लिए काम के प्रति सम्मान हेतु ही बुनियादी तालीम को महत्वपूर्ण माना।

आज की जरूरत

आज भी शिक्षा में लचीलापन एवं तरीकों की विविधता जरूरी है

"ज्ञान व हुनर के विकास हेतु बच्चे के परिवेश को संसाधन माना जाए।"

"सारे विषय गतिविधियों के जरिये कर दिये जाएं।"

"बच्चों को छोटे समूहों में काम करना सिखाया जाए।"

"कक्षा की गतिविधियां बच्चों के घरेलू जीवन को भी विस्तार दें।"

"कक्षा के बाहर काम करने का अवसर हो।"

"कुछ विषय गहरी पड़ताल के लिए रखे जाएं।"

"बच्चों को शिक्षक से स्वतंत्र होकर काम करने का असवर हो।"

"पाठ्यपुस्तकें फिर से लिखी जाएं।"

प्रो. यशपाल ने ठीक कहा है–"भारतीय पाठ्य पुस्तकें बच्चों की दिलचस्पी और भागीदारी को प्रोत्साहित नहीं कर पाती एवं करने की क्षमता भी नहीं रखती।"

"हमारी पाठ्य पुस्तकें बच्चों को आस-पास की दुनिया का अवलोकन करने या सोद्देश्य गतिविधियां करने को नहीं उकसातीं।"

"दिलचस्पी-जिज्ञासा जगाने के लिहाज से आज की पाठ्य पुस्तकें गांधीजी के जमाने से भी गई बीती हैं।"

"खामियां दूर की जा सकती हैं—यदि पाठ्य पुस्तकों को लिखने में शिक्षकों की भागीदारी से व थोड़ी सावधानी से लिखी जाएं।"

गांधी जी को गंवाया या भुलाया?

हमने गांधी जी को गवां तो दिया ही था आज भुला भी दिया है और वापस याद करने में कतरा रहे हैं, शरमा रहे हैं, हम संजीदा भी नहीं हैं। हालत तो यह है कि न हम टेगोर के रहे और न ज़ाकिर हुसैन के, न गांधी के काम के रहे, न टेगोर के हृदय के और न ज़ाकिर हुसैन के जेहन के। इन साठ सालों के सफर को सिफर का सफर न भी कहें तो भी 'सबके लिए शिक्षा' का स्वप्न तो अभी साकार होना शेष है। सार्वजनीकरण के लक्ष्य जो संविधान में लक्षित हैं वहां तक पहुंचना आज की रफ्तार से तो कह सकते हैं पचास वर्ष और चाहिए। कौन करेगा 50 वर्ष तक इंतजार, कुछ प्रश्न तो आज ही उत्तर और समाधान चाहते हैं। पंचायती राज, सत्ता का विकेंद्रीयकरण किया और सुदृढ़ भी किया, संविधान का 73वां संशोधन भी किया, उच्च प्राथमिक शिक्षा को इन्हीं संस्थाओं को सौंपने का राजनीतिक निर्णय एवं इच्छा शक्ति भी प्रकट कर दी गई है...कुछ तूफान, भूकंप और आंधियां...आंदोलन की तैयारियां भी हो रही हैं...फिर क्या होगा "सबके लिए शिक्षा" के स्वप्न का?

इक्कीसवीं सदी में शिक्षा के आयाम

कुछ आशा बंधी थीं 'लोक जुम्बिश' की 1992 की शुरुआत से कि चलो राजस्थान में हलचल, स्पंदन-आंदोलन का आगाज़ तो हुआ है। सार्वजनीकरण, महिला समानता की ओर बढ़ते हुए, गुरु का गुरुत्व पुनः स्थापित होगा। खूब धूम मची सूक्ष्म नियोजन, सर्वेक्षण, ग्राम शिक्षा समितियों, प्रवेशोत्सव में लोक सहभागिता, गुणवत्ता और शिक्षा के स्तर में सुधार के साथ-साथ सहमति, साझेदारी, सहयोग, सजगता बढ़ी, संवेदनशीलता, पारदर्शिता एवं खुलेपन की खिड़कियां खुली भी...और खुली ही रह गईं न जाने यह क्या हो गया?...। हम प्रयोग पर प्रयोग कर रहे हैं, अनुदान और ऋण के पीछे भाग दौड़ कर रहे हैं, कभी स्वैच्छिक संस्थाओं की तरह मिशन पद्धति पर तो कभी किसी नई धुन पर थिरकने के लिए घुंघरू बांध रहे हैं। जो ढांचे तैयार हुए वे चरमराने लग गये हैं, नये सांचे बनाये जा रहे हैं, गांव, गांव के बच्चे, गांव के गुरु और अभिभावक आज फिर चौराहे पर खड़े हैं।

जिस गति से जनसंख्या बढ़ रही है अनुमान है कि 21वीं सदी के प्रारंभ में ही हमें बहुत स्कूलों की जरूरत पड़ेगी। 12 लाख स्कूल जिनमें तीन चौथाई प्राथमिक स्तर के होंगे तथा एक करोड़ मानवीय संसाधनों की आवश्यकता रहेगी। इस वृद्धि के लिए 10,000 करोड़ राशि का प्रावधान करना पड़ेगा। यह तो केवल औपचारिक शिक्षा की जरूरतें हैं। 21वीं सदी में तो जीवन पर्यंत शिक्षा व्यवस्था, वैकल्पिक व्यवस्था, अनौपचारिक पार्ट टाइम, दूरस्थ शिक्षा, खुले विश्वविद्यालय, पत्राचार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, कम्प्युटर, इंटरनेट का सर्वाधिक उपयोग आदि कई तरह की समझ प्रशिक्षण एवं उपयोग की व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए हमारे अपने विद्यालयों को भी बदलना पड़ेगा, शिक्षकों को बदलना-रूपांतरित होना पड़ेगा। आज के स्कूल कल के 'अधिगम केंद्र' होंगे। आज के स्कूल शिक्षक को 'सुविधा दाता' फेसीलीटेटर बनना पड़ेगा। पढ़ाने के बजाय

सीखने-सिखाने, अधिगम पर जोर देना पड़ेगा। स्कूलों को ही नहीं सारे समाज को 'अधिगम समाज' (Learning Society) के रूप में परिवर्तित होना पड़ेगा। 21वीं सदी में शिक्षक और शिक्षालय को ज्ञानार्थी, प्रतिपादक, संचारक, संगठक, समन्वयक, प्रवर्तक, समस्या निवारक की बहुआयामी भूमिकाएं निभानी पड़ेगी। इसके लिए बहुत प्रयास एवं प्रयत्न, अभियान एवं आंदोलन करना पड़ेगा, समुदाय की सहभागिता, सहयोग, सहकार प्राप्त करना पड़ेगा।

स्कूलों को चार दिवारी से बाहर आना पड़ेगा। लचीलापन, सहजता, सजगता, अनौपचारिकता और सही अर्थों में 'सामुदायिक स्कूल' (Community School) बनाना पड़ेगा। समाज को नेतृत्व, निकटता, नवीनता एवं नवाचार समर्पित करना होगा।

अंत में बालक से भी अपेक्षाएं होंगी कि वह चरित्रवान, अनुशासन प्रिय एवं परिश्रमी बने। वह जिज्ञासु, सजग, स्वावलंबी, सृजनशील, कौशल युक्त, आत्मविश्वासी, उदार, मानवीय गरिमामय चेतनशील एवं क्रियाशील बने। एक अच्छा भारतीय बने और अच्छा नागरिक बने।

इन 50-60 वर्षों के सफर में हमने शिक्षा के क्षेत्र में कई प्रयोग, परीक्षण, नवाचार और प्रतिमानों के हर स्तर पर कार्य किया है, अनुभव भी प्राप्त किये हैं, लेकिन आज भी हम सर्व सुलभ, सार्वजनीकरण के लक्ष्य के साथ इसे आत्मनिर्भरता एवं स्वावलंबन युक्त व्यक्तित्व निर्माण की तलाश में भटक ही रहे हैं।

आजादी के बाद शिक्षा के कई आयोग, समितियां और संगोष्ठियां हुई। आज भी हो रही हैं, नीतियां बन रही हैं, बनेंगी...अभी भी हमें तलाश है, ललक है, लालसा है, अच्छी शिक्षा की, सर्वांगीण एवं सार्वजनीन...सबको शिक्षा की, परिवेश से जुड़े रहने की...जीवन की...हाथ से काम करने...श्रम के प्रति निष्ठा की...प्रवृत्ति मूलक शिक्षा की...अधिगम... अनुभव एवं अपनत्व की...यह तलाश जारी रहेगी।

इस संपूर्ण प्रक्रिया में अभिभावकों के चिंतन एवं व्यवहार में, नज़रिये में भी बदलाव अपेक्षित है जैसा कि *खलील जिब्रान* की यह कविता आप और हम सब शिक्षा कर्मियों एवं तथा कथित शिक्षा प्रशासकों एवं प्रबंधकों के लिए उपयोगी होगी।

"तुम्हारी संतानें तुम्हारी नहीं,
"जीवन, की अपनी अभिलाषाओं की संतानें हैं,
वे तुम्हारे माध्यम से आती हैं, निमित्त से नहीं,
और यद्यपि वे तुम्हारे साथ है, लेकिन तुम्हारी नहीं, तुम उन्हें अपना अनुराग दे सकते हो, विचार नहीं,
क्योंकि उनके पास उनके अपने विचार हैं।
तुम उनकी काया को आवास दे सकते हो, आत्मा को नहीं,
क्योंकि उनकी आत्माएं भविष्य के भवन में निवास करती है।
जहां तुम पहुंच नहीं सकते, स्वप्न में भी नहीं।
तुम उनकी तरह होने का प्रयास कर सकते हो,
किंतु उनको अपने जैसा बनाने का प्रयत्न मत करना,
क्योंकि जीवन पीछे नहीं लौटता,
न तो अतीत के साथ ठहरता है।
तुम वह धनुष हो,
जहां से तुम्हारी संतानें सजीव बाणों की तरह आगे की ओर प्रेषित हैं...